

Volume 3; Issue 1

E-ISSN: 3048-6742

January to March 2026

Sanskriti-Samvahika

संस्कृति-संवाहिका

Peer Reviewed

Indexed

Refereed Journal

Quarterly Journal

Sanskriti-Samvahika संस्कृति-संवाहिका

E-ISSN: 3048-6742

<https://sanskritisamvahika.in>

Volume 3; Issue 1; January to March, 2026; Page No. 13-22

Peer Reviewed, Indexed and Refereed Journal

योगदर्शनानुसार समाधि का स्वरूप एवं प्रकार

नाजमा हासान

शोधार्थी

विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग,

ल. ना. मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार।

Email: najmahasan1993@gmail.com

सारांश

योग दर्शन में समाधि को साधना की चरम अवस्था तथा आध्यात्मिक उन्नति का सर्वोच्च सोपान माना गया है। प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य योग दर्शन के अन्तर्गत समाधि के स्वरूप, उसके प्रकारों तथा उसके दार्शनिक महत्त्व का विश्लेषण करना है। पतञ्जलि के अष्टाङ्ग योग में समाधि को अन्तिम अङ्ग के रूप में स्थापित किया गया है, जहाँ चित्तवृत्तियों का पूर्ण निरोध होकर साधक आत्मस्वरूप में स्थित हो जाता है। इस अवस्था में ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान की त्रिपुटी का लय हो जाता है, जिससे अद्वैत तत्त्व के अनुभव की प्राप्ति होती है। इस शोधपत्र में सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि के भेद, उनके साधन तथा उनके परिणामों का विवेचन किया गया है। साथ ही समाधि को केवल एक ध्यानात्मक अवस्था न मानकर, उसे आत्मसाक्षात्कार और मोक्ष की प्राप्ति का माध्यम सिद्ध किया गया है। प्रस्तुत शोधपत्र में यह भी स्पष्ट किया गया है कि समाधि का अनुभव व्यक्ति को मानसिक शुद्धि, आन्तरिक शान्ति तथा परम आनन्द की ओर अग्रसर करता है। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि योग दर्शन में समाधि का स्वरूप केवल आध्यात्मिक साधना का लक्ष्य ही नहीं, अपितु जीवन के समग्र रूपान्तरण का आधार भी है, जो साधक को परम सत्य के साक्षात्कार तक पहुँचाता है।

कूटशब्द - समाधि, चित्तवृत्ति निरोध, सम्प्रज्ञात समाधि, असम्प्रज्ञात समाधि, कैवल्य।

भारतीय दर्शन की समृद्ध परम्परा में योग दर्शन का विशेष स्थान है, जो न केवल सैद्धान्तिक विचारों का प्रतिपादन करता है, अपितु व्यावहारिक साधना-पद्धति के माध्यम से आत्मानुभूति का मार्ग भी प्रशस्त करता है। महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रतिपादित योगसूत्र में योग को 'चित्तवृत्ति निरोध' के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसका परम लक्ष्य 'समाधि' की अवस्था की प्राप्ति है। 'समाधि' योग साधना की चरम परिणति है, जहाँ साधक की चित्तवृत्तियाँ पूर्णतः शान्त होकर आत्मा (पुरुष) के स्वरूप में स्थित हो जाती हैं। 'समाधि' का स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म, गहन तथा अनुभवात्मक है, जिसे केवल बौद्धिक स्तर पर समझना पर्याप्त नहीं, अपितु साधना के माध्यम से प्रत्यक्ष अनुभव करना आवश्यक है। योग दर्शन में 'समाधि' को केवल ध्यान की उच्च अवस्था नहीं माना गया है, अपितु इसे आत्मसाक्षात्कार और मोक्ष की प्राप्ति का साधन बताया गया है। इस अवस्था में ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान का भेद समाप्त हो जाता है और साधक अद्वैत तत्त्व के अनुभव (पुरुष) की स्थिति को प्राप्त करता है। प्रस्तुत शोधपत्र में योग दर्शन के परिप्रेक्ष्य में 'समाधि' के स्वरूप का विश्लेषण किया गया, जिसमें उसके विभिन्न प्रकार सम्प्रज्ञात एवं असम्प्रज्ञात समाधि तथा उनके लक्षणों और साधना प्रक्रिया का विवेचन साथ ही 'समाधि' की दार्शनिक एवं आध्यात्मिक महत्ता को स्पष्ट करते हुए यह समझाने का प्रयास किया गया कि यह अवस्था किस प्रकार साधक के जीवन में आन्तरिक परिवर्तन और परम शान्ति का आधार बनती है।

'समाधि' शब्द का शाब्दिक अर्थ है - 'सम्यक् अधीयते इति समाधिः' अर्थात् जिसमें मन पूर्ण रूप से एकाग्र होकर किसी एक विषय पर स्थित हो जाए। 'सम्' उपसर्ग यहाँ पूर्णता, सम्पूर्णता का बोध कराता है। 'धा' धातु का अर्थ है - धारण करना, स्थापन करना। इस प्रकार 'समाधि' का अर्थ हुआ - 'चित्त का पूर्ण रूप से किसी एक तत्त्व में धारण अथवा लीन होना'। साधारण 'एकाग्रता' और 'समाधि' में यही भेद है कि एकाग्रता में अभी साधक और विषय के बीच दूरी बनी रहती है किन्तु 'समाधि' में साधक और विषय का भेद लुप्त हो जाता है। महर्षि पतञ्जलि ने 'समाधि' के बारे में कहा है कि जब ध्यान की अवस्था में साधक स्वयं को भूलकर केवल ध्येय (लक्ष्य) में लीन हो जाए, तो वह 'समाधि' है। यह ध्यान का सर्वोच्च रूप है - "तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् । तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः"। ध्यान वह है, जिसमें चित्त का प्रवाह किसी एक प्रत्यय (विचार-वस्तु) में निरन्तर होता है। 'समाधि' वह है, जिसमें वही प्रत्यय शेष रहता है, परन्तु चित्त का स्वरूप जैसे लुप्त हो जाता है। योगसूत्र पर लिखे गये व्यासभाष्य में 'समाधि' की गहन व्याख्या की गयी है। व्यास कहते हैं कि जब चित्त पूर्णतः एकाग्र हो जाता है, तब

उसे 'समाधि' कहते हैं - “यदा चित्तस्यैकाग्रता तदा समाधिः”ⁱⁱ । व्यासभाष्य 'समाधि' को चित्त और पुरुष (आत्मा) के सम्बन्ध के आलोक में स्पष्ट करता है अर्थात् जब चित्त की वृत्तियाँ शान्त होती हैं और वह चित्त केवल पुरुष (आत्मा) के स्वरूप को प्रतिबिम्बित करता है तभी उसे 'समाधि' कहते हैं । यह आत्मा के स्वरूप का प्रत्यक्ष अनुभव है ।

अन्य टीकाकारों की अनुसार 'समाधि' की परिभाषाएँ -

(1) वाचस्पति मिश्र (तत्त्ववैशारदी) –

वाचस्पति मिश्र 'समाधि' को 'चित्त की वृत्तियों की परिपूर्ण शान्ति' कहते हैं । उनके अनुसार 'ध्यान' और 'समाधि' का अन्तर यह है कि ध्यान में अभी भी चित्त का स्वरूप विद्यमान रहता है, जबकि 'समाधि' में वह जैसे विलीन हो जाता है ।

(2) विज्ञानभिक्षु (योगवर्तिक) - विज्ञानभिक्षु के अनुसार 'समाधि' केवल आत्मा की अनुभूति का साधन ही नहीं, अपितु वह 'परमप्रमाण' है । वे कहते हैं कि प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द के अतिरिक्त 'समाधि' भी ज्ञान का एक विशिष्ट साधन है ।

(3) भोजराज (राजमार्तण्ड) - भोजराज 'समाधि' को 'स्वात्मसाक्षात्कार' कहते हैं । उनके अनुसार 'समाधि' में साधक अपने स्वरूप को सीधे अनुभव करता है, यह किसी तर्क या विचार का विषय नहीं है ।

गीता और उपनिषदों में 'समाधि' शब्द सीधे नहीं प्रयुक्त हुआ, किन्तु उसके भाव स्पष्ट मिलते हैं । गीता में 'समाधि' के बारे में कहा गया है कि योग और अभ्यास से जब मन पूरी तरह से शान्त और निरुद्ध हो जाता है, तब योगी आत्मा को आत्मा में देखकर अपनी ही आत्मा में सन्तुष्ट और तृप्त हो जाता है । यह अवस्था परम 'समाधि' और आन्तरिक आनन्द की स्थिति है ।

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।

यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यतिⁱⁱⁱ ॥

यहाँ 'समाधि' को उस स्थिति के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसमें साधक आत्मा का आत्मा में साक्षात्कार करता है और परम तृप्ति पाता है । “नान्तःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् ।

अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यम- व्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः^{iv}

अर्थात् माण्डूक्योपनिषद् में तुरीय अवस्था को 'समाधि' की दार्शनिक पृष्ठभूमि माना गया है। यह वह अवस्था है, जिसमें जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति से परे आत्मा का स्वरूप प्रकट होता है।

आधुनिक विद्वानों की दृष्टि से 'समाधि' का स्वरूप -

1. स्वामी विवेकानन्द - 'समाधि' को उन्होंने योग की चरमावस्था माना^v। उनके अनुसार 'समाधि' वह अवस्था है, जिसमें आत्मा स्वयं को आत्मा में देखती है।
2. अरविन्द घोष - इन्होंने 'समाधि' को "सुप्रासेंटल अनुभव"^{vi} कहा। उनके अनुसार 'समाधि' केवल आत्मा की मुक्ति ही नहीं, अपितु दिव्य चेतना की अभिव्यक्ति का साधन भी है।
3. डा. एस. राधाकृष्णन - इन्होंने 'समाधि' को भारतीय अध्यात्म का मूल बताया^{vii}। उनके अनुसार यह केवल धार्मिक साधना का भाग नहीं, बल्कि चेतना का सार्वभौमिक सत्य है।

'समाधि' की परिभाषा केवल एक शब्द नहीं, अपितु अनेक स्तरों पर समझी जाती है। योगसूत्र में इसे चित्तवृत्ति-निरोध की परिपूर्णता कहा गया है। व्यासभाष्य और अन्य टीकाकार इसे आत्मसाक्षात्कार की अवस्था मानते हैं। उपनिषद् और गीता इसके भाव को आत्मा और ब्रह्म के साक्षात्कार से जोड़ते हैं। आधुनिक चिन्तक इसे चेतना की उच्चतम अवस्था के रूप में देखते हैं। इस प्रकार 'समाधि' की परिभाषा बहुआयामी है, परन्तु उसका सार यही है कि 'समाधि' आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव है, जहाँ चित्त और आत्मा का भेद लुप्त हो जाता है। पतञ्जलि के योगसूत्र तथा उसके भाष्य-टीकाओं में 'समाधि' को दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया गया है – (1) सम्प्रज्ञात समाधि और (2) असम्प्रज्ञात समाधि।

(1) सम्प्रज्ञात समाधि - सम्प्रज्ञात समाधि का अर्थ है, ऐसी समाधि जिसमें अभी भी किसी 'प्रज्ञा' (ज्ञान, विषय, वृत्ति) का अस्तित्व बना रहता है अर्थात् साधक का मन पूर्णरूपेण शून्य नहीं हुआ है, बल्कि वह किसी विशेष प्रत्यय में स्थित है। पातञ्जल योगसूत्र में कहा गया है कि "वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् संप्रज्ञातः"^{viii}।

इस योगसूत्र के अनुसार सम्प्रज्ञात समाधि चार भेदों में विभक्त है -

1. वितर्कानुगत समाधि

2. विचारानुगत समाधि

3. आनन्दानुगत समाधि

4. अस्मितानुगत समाधि

(क) वितर्कानुगता समाधि - यह 'समाधि' स्थूल विषयों पर आधारित होती है। जब साधक किसी स्थूल पदार्थ जैसे पृथ्वी, शरीर, देवता या प्रतीक पर ध्यान करते-करते उसमें पूर्ण लीन हो जाता है तो यह वितर्कानुगत समाधि कहलाती है। यहाँ 'वितर्क' का अर्थ है - 'स्थूल विचार' अथवा 'प्रत्यक्ष अनुभव'। उदाहरणतः मूर्ति या किसी मन्त्र पर ध्यान करके साधक उसमें लीन हो जाए, तब यह वितर्कानुगता समाधि है^x।

(ख) विचारानुगत समाधि - इसमें सूक्ष्म विषयों का आधार लिया जाता है। 'विचार' का अर्थ है - सूक्ष्म तत्त्वों (तन्मात्राओं, सूक्ष्मदेवता, सूक्ष्म तत्त्व-कल्पना) पर एकाग्र होना। यह वितर्क से सूक्ष्मतर अवस्था है। उदाहरणतः आकाश, मन, बुद्धि या सूक्ष्म तत्त्वों पर ध्यान करके साधक समाधिस्थ हो जाता है^x।

(ग) आनन्दानुगत समाधि - यहाँ साधक का ध्यान किसी विशुद्ध आनन्द के अनुभव में लीन होता है। जब चित्त अपने स्थूल और सूक्ष्म विषयों से परे होकर केवल परमानन्द का अनुभव करता है, तब यह अवस्था होती है। यह समाधि अधिक उन्नत है क्योंकि इसमें मन किसी विशेष विषय से नहीं, अपितु सुख के अनुभव से जुड़ा रहता है।

(घ) अस्मितानुगत समाधि - यह सम्प्रज्ञात समाधि का सबसे उच्च स्तर है। इसमें साधक केवल 'अहं' या 'अस्मि' भाव में स्थित हो जाता है। यहाँ मन सभी विषयों और अनुभवों को छोड़कर केवल आत्मस्वरूप के अहंकारमात्र भाव का अनुसरण करता है।

(2) असम्प्रज्ञात समाधि - असम्प्रज्ञात समाधि को 'निरविषया समाधि' भी कहते हैं। इसमें सभी प्रकार के प्रत्यय (विचार, विषय) का विराम हो जाता है। केवल संस्कार मात्र शेष रहते हैं और साधक का चित्त पूर्ण शून्य की ओर अग्रसर होता है - "विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः"^{xi}। असम्प्रज्ञात समाधि में विषय या विचार का कोई स्थान नहीं है। यह न तो वितर्क है, न विचार, न आनन्द और न ही अस्मिता। यहाँ केवल चित्त की वृत्तियों का पूर्ण निरोध होता है। यही वह अवस्था है, जिसे आगे चलकर 'कैवल्य' कहा जाता है।

पातञ्जल योगसूत्र में समाधि की गहन व्याख्या प्राप्त होती है, किन्तु भारतीय दार्शनिक परम्परा में अन्य आचार्यों और सम्प्रदायों ने भी 'समाधि' के विविध भेदों का निरूपण किया है। इनमें मुख्यतः सवितर्क-निर्वितर्क,

सविचार-निर्विचार और सबीज-निर्बीज समाधियों का उल्लेख मिलता है। इन विभाजनों का आधार साधक की मानसिक स्थिति, ध्यान की गहराई तथा विषय शब्द भेद के लोप अथवा अवशेष पर आधारित है। नीचे इन उपविभाजनों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत है –

- “सवितर्क समाधि” में साधक का चित्त अभी तक विषय और उसके नाम (शब्द) के बीच के भेद को पूरी तरह नहीं छोड़ पाता। उदाहरणार्थ यदि साधक “पृथ्वी तत्त्व” का ध्यान कर रहा है तो उसके चित्त में ‘पृथ्वी’ शब्द और ‘पृथ्वी’ का रूप दोनों उपस्थित रहते हैं। यहाँ ध्यान में एकाग्रता तो है किन्तु शब्द और विषय का लोप नहीं होता। इसीलिए इसे ‘सवितर्क’ कहा गया है।
- “निर्वितर्क समाधि” वह अवस्था है, जहाँ शब्द और विषय का भेद समाप्त हो जाता है। अब साधक केवल शुद्ध ‘अनुभव’ में स्थित होता है, नाम और रूप का कोई अव्यय नहीं रहता। जैसे पृथ्वी पर ध्यान करते हुए साधक केवल उसके “सत्ता” का अनुभव करता है, न कि उसके नाम या बाह्य रूप का। यह अवस्था अधिक सूक्ष्म और गहन मानी जाती है^{xii}।
- “सविचार समाधि” में ध्यान का विषय स्थूल न होकर सूक्ष्म होता है। यहाँ साधक किसी सूक्ष्म तत्त्व जैसे तन्मात्रा, अहंकार या महत् पर ध्यान करता है। यद्यपि वह सूक्ष्म भेदों का अनुभव करता है, फिर भी उनका ज्ञान शेष रहता है। यह अवस्था स्थूल से सूक्ष्म की ओर संक्रमण का द्योतक है।
- “निर्विचार समाधि” में साधक का चित्त सूक्ष्म भेदों से ऊपर उठ जाता है। यहाँ न तो कोई सूक्ष्म तत्त्व का भान रहता है और न ही किसी प्रकार की भेदबुद्धि का। केवल शुद्ध अनुभव शेष रहता है, जो आत्मस्वरूप की ओर ले जाने वाला होता है। पतञ्जलि ने इस अवस्था को विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण माना है क्योंकि यह आत्मसाक्षात्कार के और अधिक निकट ले जाती है।

‘समाधि’ का सर्वोच्च विभाजन “सबीज और निर्बीज” के रूप में किया जाता है।

- “सबीज समाधि” वह है, जहाँ अभी भी चित्त में ‘बीज’ अर्थात् वृत्तियाँ, संस्कार या विषय उपस्थित रहते हैं। यहाँ साधक यद्यपि गहन समाधि में होता है, किन्तु उसका ध्यान किसी न किसी विषय पर टिका होता है। इस प्रकार इस अवस्था में भविष्य में पुनः वृत्तियों के उदय की सम्भावना बनी रहती है।

- “निर्बीज समाधि” को ‘समाधि’ की परम और चरम अवस्था कहा गया है। यहाँ कोई भी बीज शेष नहीं रहता, न वृत्ति, न संस्कार, न विषय। केवल शुद्ध आत्मा का प्रकाश प्रकट होता है। यह अवस्था ‘कैवल्य’ या ‘मोक्ष’ की सीढ़ी मानी जाती है, जहाँ साधक पूर्ण रूप से जगत् के बन्धनों से मुक्त होकर अपने स्वस्वरूप में स्थित होता है।

सवितर्क-निर्वितर्क, सविचार-निर्विचार और सबीज-निर्बीज में एक क्रमिक प्रगति दिखाई देती है। सवितर्क से निर्वितर्क और सविचार से निर्विचार समाधि की ओर साधक धीरे-धीरे शब्द, विषय और भेदबुद्धि से ऊपर उठता है। अन्ततः सबीज से निर्बीज समाधि तक पहुँचकर वह आत्मस्वरूप में स्थित होकर पूर्ण मोक्ष की ओर अग्रसर होता है। इस प्रकार ये उपविभाजन साधक की अन्तर्मुख यात्रा के क्रमिक सोपान हैं। ‘समाधि’ के विविध प्रकारों के विवेचन से यह तथ्य प्रत्यक्ष होता है कि योगमार्ग का साधक एक क्रमिक प्रगति की प्रक्रिया से होकर गुजरता है। प्रारम्भ में उसकी चेतना स्थूल विषयों पर केन्द्रित रहती है, जहाँ शब्द और विषय का भेद विद्यमान होता है। धीरे-धीरे साधना के अभ्यास से वह सूक्ष्म विषयों की ओर अग्रसर होता है और अंततः उस स्थिति तक पहुँचता है, जहाँ न तो कोई भेद रहता है और न ही कोई विषय केवल शुद्ध आत्मानुभव की ज्योति प्रकट होती है। इस यात्रा में ‘सम्प्रज्ञात समाधि’ साधक के लिए साधना की एक महत्वपूर्ण सीढ़ी है। यहाँ वृत्तियों और विषयों का सूक्ष्म स्तर पर अवशेष बना रहता है, जिससे साधक क्रमशः आत्मस्वरूप की ओर बढ़ता है। इसके विपरीत, ‘असम्प्रज्ञात समाधि’ वह चरम लक्ष्य है जहाँ सभी बीज, संस्कार और वृत्तियाँ विलीन हो जाते हैं तथा साधक आत्मा की परम शुद्धावस्था में स्थित हो जाता है। अतः यह स्पष्ट है कि योगदर्शन में ‘समाधि’ केवल मानसिक एकाग्रता या ध्यान की तकनीक मात्र नहीं है, अपितु आत्मा की मुक्ति की प्रत्यक्ष और वैज्ञानिक प्रक्रिया है। यह साधक को स्थूल जगत् से ऊपर उठाकर सूक्ष्म अनुभूतियों की ओर तथा अन्ततः निरविषयी, निर्वृत्ति और ‘कैवल्य’ की ओर ले जाती है। इसीलिए ‘समाधि’ को योग का परम और अन्तिम सोपान कहा गया है।

पातञ्जल योगदर्शन का सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान ‘समाधि’ और ‘चित्तवृत्ति निरोध’ की अवधारणा पर केन्द्रित है। ‘समाधि’ योगमार्ग की चरमावस्था है और चित्तवृत्तियों का निरोध उसका प्रमुख साधन तथा साध्य दोनों है। अतः दोनों का सम्बन्ध अविच्छेद्य है। ‘समाधि’ के बिना चित्तवृत्ति निरोध सम्भव नहीं और चित्तवृत्ति निरोध के बिना ‘समाधि’ की प्राप्ति नहीं हो सकती। ‘समाधि’ वह अवस्था है, जिसमें साधक का चित्त पूर्णतः एकाग्र होकर विषय, नाम और भेद

से परे आत्मस्वरूप में स्थित हो जाता है। यह योग का परम सोपान है। पूर्ववर्ती अध्यायों में स्पष्ट किया गया है कि 'समाधि' के अनेक भेद हैं – “सवितर्क-निर्वितर्क, सविचार-निर्विचार तथा सबीज-निर्बीज”। इन सभी का अन्तिम लक्ष्य चित्त को स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों प्रकार की वृत्तियों से मुक्त करना है।

“चित्तवृत्तियों का स्वरूप” - पतञ्जलि के अनुसार चित्त स्वभावतः चञ्चल है। विषय संसर्ग से उसमें निरन्तर तरंगें उठती रहती हैं, जिन्हें वृत्तियाँ कहा जाता है। ये वृत्तियाँ पाँच प्रकार की मानी गयी हैं -

1. प्रमाण (यथार्थ ज्ञान)
2. विपर्यय (मिथ्या ज्ञान)
3. विकल्प (कल्पना या अनुमान)
4. निद्रा (अज्ञान रूपी स्थिति)
5. स्मृति (अतीत का ज्ञान)

इन वृत्तियों के कारण चित्त स्थिर नहीं रह पाता और साधक आत्मानुभव से वंचित होता है। आत्मा का साक्षात्कार तभी सम्भव है, जब चित्त वृत्तिरहित हो जाए। जल के तरंगित होने पर उसमें चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब अस्पष्ट दिखाई देता है, किन्तु जल के स्थिर होते ही प्रतिबिम्ब स्वच्छ हो जाता है। इसी प्रकार जब तक चित्त में वृत्तियों की चंचलता बनी रहती है, आत्मा का अनुभव धूमिल रहता है। निरोध के माध्यम से जब चित्त पूर्णतः शान्त होता है, तब आत्मा का स्वरूप अपने वास्तविक तेज से प्रकट होता है।

‘समाधि’ वस्तुतः चित्तवृत्ति निरोध का ही परिपूर्ण रूप है। ‘सम्प्रज्ञात समाधि’ में वृत्तियाँ सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहती हैं, जबकि ‘असम्प्रज्ञात या निर्बीज समाधि’ में वृत्तियों का पूर्ण निरोध हो जाता है। इस प्रकार ‘समाधि’ का मार्ग निरोध से होकर जाता है और निरोध की परिणति ‘समाधि’ में होती है। अतः यह कहा जा सकता है कि योगदर्शन का मूल सार ‘योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः’ सूत्र में निहित है। योग का प्रयोजन केवल साधक को शारीरिक, मानसिक अनुशासन तक सीमित नहीं करता अपितु उसे ‘समाधि’ रूपी परम लक्ष्य तक ले जाता है। ‘समाधि’ और ‘चित्तवृत्ति निरोध’, दोनों मिलकर योग की आत्ममुक्ति की प्रक्रिया को पूर्ण करते हैं। यहाँ ‘चित्त’ शब्द से अभिप्राय केवल मन (मनस्) से नहीं है, अपितु सम्पूर्ण अन्तःकरण चतुष्टय से है – “मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त (स्मृति)”। ये

सभी मिलकर वह आन्तरिक साधन हैं, जिनके द्वारा जीव अनुभव करता है, निर्णय करता है और स्मरण करता है। योगदर्शन में चित्त ही वह प्रधान तत्त्व माना गया है, जो बाह्य विषयों से प्रभावित होकर वृत्तियों का निर्माण करता है।

‘वृत्ति’ का अर्थ है - चित्त की गतिशीलता, उसकी तरंगें अथवा कार्यप्रवृत्तियाँ। जब चित्त किसी विषय से जुड़ता है, तब उसमें ज्ञान, संकल्प, विकल्प, स्मृति, कल्पना आदि उत्पन्न होते हैं। यही उसकी वृत्तियाँ हैं। पतञ्जलि ने आगे पाँच प्रकार की वृत्तियों का उल्लेख किया है – ‘प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति’। यही वृत्तियाँ चित्त को अस्थिर बनाती हैं और आत्मस्वरूप के अनुभव में बाधा उत्पन्न करती हैं।

‘निरोध’ का तात्पर्य है - वृत्तियों का पूर्ण निराकरण, शमन अथवा स्थगन। यह स्थिति तब आती है, जब साधक का चित्त पूर्णतः एकाग्र होकर किसी भी प्रकार के संकल्प-विकल्प से मुक्त हो जाता है। निरोध का अर्थ वृत्तियों का दमन नहीं, अपितु उनका स्वाभाविक शान्त हो जाना है। जैसे स्थिर जल में आकाश का प्रतिबिम्ब स्वच्छ दिखाई देता है, वैसे ही वृत्तिरहित चित्त में आत्मा का स्वरूप प्रकट होता है। अतः इस सूत्र का अभिप्राय यह है कि योग का लक्ष्य केवल शारीरिक आसन या प्राणायाम तक सीमित नहीं है, बल्कि चित्त की सम्पूर्ण गतिविधियों को शान्त करके साधक को उसके शुद्ध आत्मस्वरूप का साक्षात्कार कराना है। यही अवस्था वास्तविक ‘समाधि’ और अन्ततः कैवल्य की प्राप्ति का मार्ग है।

योग दर्शन में ‘समाधि’ साधना की चरम अवस्था तथा आध्यात्मिक उन्नति का सर्वोच्च लक्ष्य है। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार चित्तवृत्तियों के पूर्ण निरोध के माध्यम से साधक उस स्थिति को प्राप्त करता है, जहाँ आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप में प्रतिष्ठित होती है। यह अवस्था केवल मानसिक शान्ति तक सीमित नहीं है, अपितु आत्मसाक्षात्कार और मोक्ष की प्राप्ति का द्वार भी है। ‘समाधि’ के विभिन्न रूप सम्प्रज्ञात एवं असम्प्रज्ञात समाधि साधना के क्रमिक विकास को दर्शाते हैं, जहाँ साधक धीरे-धीरे स्थूल से सूक्ष्म और अन्ततः निराकार अनुभव की ओर अग्रसर होता है। इस प्रक्रिया में चित्त की एकाग्रता, वैराग्य तथा अभ्यास की महत्ता विशेष रूप से प्रतिपादित होती है। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि समाधि का स्वरूप योग दर्शन में केवल एक दार्शनिक अवधारणा नहीं, अपितु एक जीवन्त अनुभव है, जो साधक के समग्र व्यक्तित्व को रूपान्तरित करता है। यह अवस्था व्यक्ति को आन्तरिक शुद्धि, स्थिरता, शान्ति और आनन्द की ओर ले जाती है तथा उसे परम सत्य के साक्षात्कार तक पहुँचाती है। अतः समाधि न केवल

योग साधना का लक्ष्य है, अपितु मानव जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि भी है, जो जीवन के आध्यात्मिक, नैतिक और मानसिक आयामों को पूर्णता प्रदान करती है।

-
- ⁱ योगसूत्र, 3.2-3, पृ. 131
ⁱⁱ योगसूत्रव्यासभाष्य, 1.41, पृ. 57
ⁱⁱⁱ श्रीमद्भगवद्गीता, 6.20-21, पृ. 113
^{iv} माण्डूक्योपनिषद्, मन्त्र 7, पृ. 34
^v राजयोग, समाधि, पृ. 133
^{vi} The Life Divine, P - 942
^{vii} Indian Philosophy, Volume II, P - 293
^{viii} योगसूत्र, 1.17, पृ. 37
^{ix} योगसूत्रव्यासभाष्य, 1.17, पृ. 39
^x योगसूत्रतत्त्ववैशारदी, 1.17, पृ. 48
^{xi} योगसूत्र, 1.18, पृ. 40
^{xii} योगसूत्र, 1.42-43, पृ. 61

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. योगसूत्र (व्यासभाष्य सहित), चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2018
2. योगवार्तिक, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2016
3. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2020
4. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2014
5. ब्रह्मसूत्र (शाङ्करभाष्य सहित), चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 2017
6. माण्डूक्योपनिषद्, गौड़पादाचार्य, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, 2017
7. योगसूत्र (तत्त्ववैशारदीसहित), चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, 2018
8. राजयोग, स्वामी विवेकानन्द, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 1896
9. Aurobindo, Sri, The Life Divine, Pondicherry, Sri Aurobindo Ashram, 1939
10. Radhakrishnan, S, Indian Philosophy, Volume 2, London: George Allen @ Unwin, 1927